Bodhi-Path Year 2022 January Issue Volume 22 Page No 48-55

धम्मपद अट्ठकथा में वर्णित सामाजिक अवस्था

डॉ0 षत्रुध्न कुमार, षोध छात्र, पालि विभाग, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा (समविष्वविद्यालय) संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नालन्दा 803111 (बिहार) kumarshatrudhan7@gmail.com, Mob.- 9507217899

बौद्ध युग के उपदेषों के प्रबल प्रभाव को जानने के लिए तत्कालीन सामाजिक दषा पर विचार करना अनिवार्य है। बौद्ध त्रिपिटक ग्रन्थ के अनुषीलन से सामाजिक अवस्था का रोचक चित्र हमें उपलब्ध होता है। इस युग में जाति भेद अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। जाति के अनुसार उच्च–नीच की भावना अति प्रबल हो गयी थी। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों ही अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रयत्नषील थे। इनमें क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैष्य को उच्च जाति का माना गया है। इस युग के सामाजिक जीवन में एक और प्रमुख बात यह पायी जाती है कि विभिन्न जातियाँ अलग–अलग ग्रामों में बसने लगी। बौद्ध ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण ग्राम, क्षत्रिय ग्राम, बनिया ग्राम, निषाद ग्राम, चांडाल ग्राम जैसे जातियों के आधार पर ग्राम बने थे। बौद्ध युग में भगवान् बुद्ध के द्वारा जातिवाद का खण्डन किया गया था पर उन्हें कहाँ तक सफलता मिली, यह प्रष्न विवादास्पद है। हालांकि भगवान् बुद्ध को जातिवाद के खण्डन में पूर्णरूप से केवल भिक्षु संघ में सफलता मिली थी।

ब्राह्मण– ब्राह्मण रचित ग्रन्थों में ब्राह्मण–वर्ग का स्थान सर्वोपरि है, परन्तु बौद्ध साहित्य में क्षत्रिय का। वर्णों की सूची में इसका स्थान प्रथम आता है।[1] बौद्ध लेखकों के अनुसार ब्राह्मण को तीनों वेदों का ज्ञाता, इतिहास, व्याकरण, लोकायत आदि अनेक विषयों का मर्मज्ञ होना बतलाया गया है। बुद्धकालीन समाज का बहुसंख्यक जन समुदाय उस वेद–विहित लौकिक ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था, जिसमें वैदिक यज्ञों की प्रधानता थी। याजक के रूप में उन्हें गाय, वस्त्राभूषण, शयन सामाग्री आदि वस्तुयें दान स्वरूप मिलती रहती थी। कई ब्राह्मणों को ब्राह्मदे□य के रूप में ग्राम मिलते थे। बौद्ध अट्ठकथाओं से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मण अनेक प्रकार के कर्म करने लगे थे– जैसे कृषि, षिल्प व्यापार, सैनिक कर्म, प्रषासन इत्यादि।[2]

धम्मपद ग्रन्थ के 'ब्राह्मण वग्गो' में ब्राह्मणों के सामाजिक अवस्था का विवरण मिलता है। भगवान् के जेतवन में विहार करते समय एक ब्राह्मण ने भगवान् के पास जाकर पूछा– 'हे गोतम! आप अपने श्रावकों को ब्राह्मण कह कर पुकारते हैं। मैं तो जाति से ही ब्राह्मण हूँ।'

1. मज्झिम निकाय, भाग– 2, पृ0 सं0– 118.

2. जातक, भाग– 2, पृ0 सं0– 165.

भगवान् ने कहा– ' ब्राह्मण! मैं जाति गोत्र से ब्राह्मण नहीं कहता हूँ, केवल उत्तमार्थ अर्हत्व प्राप्त को ही ब्राह्मण कहता हूँ' कह कर इस गाथा को कहा[1]–

''झायिं विरजमासीनं, कतकिच्चं अनासवं।

उत्तमत्थं अनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।''

अर्थात्– जो ध्यानी, निर्मल आसनबद्ध, कृतकृत्य आश्रवरहित हैं, जिसने उत्तमार्थ को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

भगवान् के जेतवन में विहरते समय एक दिन एक जटाघारी ब्राह्मण ने भगवान् के पास जाकर कहा– 'हे गौतम! आप अपने षिष्यों को ब्राह्मण कहते हैं, मैं भी तो माता–पिता से सुजाज ब्राह्मण–कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, क्या आप मुझे ब्राह्मण कह सकते हैं न?'' इसे सुन शास्ता ने कहा– ' ब्राह्मण! मैं न जटा धारण करने मात्र से और न तो जाति गोत्र मात्र से ब्राह्मण कहता हूँ, जिसने सत्य को प्राप्त कर लिया है, वही ब्राह्मण है। कहकर इस गाथा को कहा[2]–

''न जटाहि न गोत्तहि, न जच्चा होति ब्राह्मणो।

यम्हि सच्च"च धम्मोच, सो सुची च ब्राह्मणो।।''

अर्थात्– न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म है, वही शुचि और वही ब्राह्मण है। श्रावस्ती के एक ब्राह्मण ने भगवान् के पास जाकर पूछा– 'हे गौतम! आप अपने षिष्यों को ब्राह्मण कहते हैं, मै भी तो ब्राह्मण योनि से उत्पन्न हुआ हूँ, क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ? इसे सुन शास्ता ने कहा– 'ब्राह्मण! मैं ब्राह्मण योनि से उत्पन्न होने मात्र से ब्राह्मण नहीं कहता, जो अपरिग्रही और निर्मल हैं, वही ब्राह्मण हैं' कहकर इस गाथा को कहा[3]–

''न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मतिसम्भवं।

भो वादी नाम सो होति, स चे होति सकि"चनो।

अकि"जनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मण।।

अर्थात् माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण किसी को मैं ब्राह्मण नहीं कहता। वह तो 'भो वादी' है, वह तो संग्रही है, मैं तो ब्राह्मण उसे कहता हूँ जो अपरिग्रही और त्यागी है।

---

1. धम्मपद पालि अट्ठकथा, पृ0 सं0– 249.

2. वही, पृ0 सं0– 253.

3. वही, पृ0 सं0– 255.

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि भगवान् बुद्ध ने जन्म से जाति निर्धारण हो स्वीकार नहीं किया बल्कि कर्म के आधार पर जाति का निर्माण स्वीकार किया। बौद्ध धर्म में कर्म का सिद्धान्त सबल होकर वर्णों के जीवन में सम्मिलित हुआ। कर्म फल का दर्षन विकसित हुआ तथा पुर्नजन्म की भी व्यवस्था की गई। किए गए कर्मों के आधार पर ही मनुष्य का जन्म माना गया। यह व्यवस्था की गई कि मनुष्य जो वर्त्तमान जीवन जीता है वह पिछले जन्म में किए गए कर्म का ही प्रतिफल है। अतः अच्छा कर्म करने वाले का जन्म उच्च वर्ण में होता है और बुरा कर्म करने वाला का कुत्ता शुकर और चण्डाल जैसी अषुभ योनियों में। स्पष्ट है कि अपने कर्मों के अनुसार ही मनुष्य भिन्न–भिन्न वर्गगत परिवारों में जन्म लेता है।

क्षत्रिय– बौद्ध धर्म में ब्राह्मण से भी बढ़कर सम्मान का पात्र था– क्षत्रिय जाति। राज्याधिकार इसी जाति के पास था, अतः उसे गौरवमय होना न्यायसंगत है। लोकमान्य होने के कारण ही बुद्ध ने क्षत्रिय वंष में जन्म ग्रहण किया था। क्षत्रिय लोगों को अपनी वर्णषुद्धि पर बड़ा गर्व था। वे जन्मगत उत्कृष्ट के विषेष पक्षपाती थे।

कौटिल्य के अनुसार क्षत्रिय का प्रमुख कर्म था अध्ययन करना, यज्ञ करना, शस्त्र ग्रहण करना तथा प्रजा की रक्षा करना।[1] मनु ने क्षत्रिय के लिए व्यवस्था दी है कि वह प्रजा की रक्षा करें, दान दें, यज्ञ करें, वेद पढ़ें और विषयों में आसक्त न हों।[2]

भगवान् बुद्ध का कथन है– हे राजन! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैष्य तथा शुद्र। ये चार वर्ण है। इनमें दो वर्ण (क्षत्रिय और ब्राह्मण) अभिवादन, प्रणामांजलि, अग्रासव तथा सेवा के चार अधिकारी है।[3] बुद्ध के इस अभिमत से स्पष्ट है कि तद्युगीन समाज में क्षत्रिय और ब्राह्मण केवल दो ही वर्ण समाज में प्रतिष्ठित थे और इन दोनों वर्णों में भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ था। यद्यपि बुद्ध ने जन्म से स्वीकार की जाने वाली श्रेष्ठता को अस्वीकार किया है तथापि माता–पिता की सात पीढ़ियों को शुद्धता की बात कही है।[4] यह कोई आष्चर्य की बात नहीं है कि बुद्ध ने कुल की प्रतिष्ठा स्वीकार की, क्योंकि बुद्ध स्वयं प्रतिष्ठित वंष में जन्में थे। अतः उनके द्वारा कुल की शुद्धता और श्रेष्ठता को स्वीकार किया जाना कोई अचरज की बात नहीं किए। वर्ण व्यवस्था का विरोध तो अवष्य किया किन्तु वह विरोध जन्मना के लिए था, कर्मणा के लिए नहीं। रूठिगत परम्परा और ऊँच–नीच की भावना का उन्होंने सर्वदा खण्डन किया तथा सदाचरण और सच्चरित्रता का समर्थन किया। व्यक्ति की प्रतिष्ठता और सम्मान उसके आचरण से माना गया है।

---

1. अर्थषास्त्र, पृ0– 36.
2. मनुस्मृति, भाग– 1 पृ0 सं0– 89.
3. मज्झिम निकाय
4. दीघ निकाय, भाग– 1.

वैष्य– बौद्ध युग में वैष्यों को श्रेष्ठी, सेठ आदि उपनामों से जाना जाता था। इनका समाज में अपना एक विषिष्ट स्थान प्राप्त था। उस युग में वे गहपति भी कहे जाते थे।[1] महावग्ग से विदित होता है कि राजगृह के एक सेट्ठी ने राजा और व्यापार निगमों का बड़ा भला किया था।[2]

व्यापार के बल पर अपार सम्पत्ति रखने वाले सेठ राजधानियों में फैले हुए थे। मगध में अमित भोग वालें पाँच व्यक्तियों के नाम मिलते हैं– जोतिय, जटिल, मेण्डक, पुष्णक तथा काकबलिय। इन व्यक्तियों को अपनी राजधानी में रखने के लिए राजा लोग लालायित रहते थे। कोसल राज प्रसेनजित के आग्रह पर मगध सम्राट बिम्बिसार ने 'मेढ़क' को उनकी राजधानी में भेजा था। शाम को वह सेठ जहाँ डेरा डाला वहीं 'साकेत' नगर बस गया। धनंजय सेठ की कन्या 'विषाखा' का विवाह श्रावस्ती के सेठ मृगारमाता के पुत्र पुण्डवर्धन के साथ हुआ था। इस विवाह की विषालता का परिचय दहेज के द्रव्यों से भलीभाँति मिलता है।

शुद्र– बौद्ध युग में शुद्रों का अर्थात् षिल्पी वर्ग का भी विषेष महत्व था। ये विभिन्न षिल्पों के माध्यम से समाज में अपने श्रेष्ठता को प्रदर्षित करते थे। उनके पेषें और षिल्प कालान्तर में आनुवंषिक हो गए।

धम्मपदट्ठकथा में एतिहासिक व्यक्तियों एवं स्थानों का उल्लेख निम्न प्रकार है–

धम्मपदट्ठकथा में वर्णित है कि कौसाम्बीवासी तिस्स एक थेर थे, वे कौसाम्बी के किसी गृहस्थ के पुत्र थे। उन्होंने बुद्ध से दीक्षा ली थी। उन थेर के पालन ने अपने सप्तवर्षीय पुत्र को तिस्स को दिया। तिस्स ने बालक को सामणेर बना लिया और उस सामणेर बालक ने बाल कटते ही अर्हत्व पद प्राप्त किया।[3]

धम्मपदट्ठकथा में विवाहों के अवसर पर किसानों से भेंट वसूल करने का भी उल्लेख मिलता है। उसमें लिखा हुआ है कि धनंजय श्रेष्ठी की कन्या विसाखा के मिगार श्रेष्ठी के पुत्र के साथ विवाह के अवसर पर प्रत्येक प्रकार की सौ–सौ वस्तुयें गावों से भेंट स्वरूप इकट्ठी की गई थी।[4] विवाह के पष्चात् लड़की को निम्नस्थ षिक्षाओं के साथ श्वसुर गृह भेजा गया था–

1. घर के भीतर की आग को बाहर मत ले जाना।
2. घर के बाहर की आग को घर के भीतर मत लाना।
3. उसी को दो जो तुमको देता है।
4. उसको मत दो जो तुम्हे नहीं देता है।
5. उन दोनों को दो, जो देता है और नहीं देता है।

---

1. महावग्ग, पृ0 सं0– 7, 28, 4.
2. वही, पृ0 सं0– 8, 1, 16.
3. धम्मपद पालि अट्ठकथा, भाग– 2, पृ0 सं0– 182, 185.
4. वही, भाग– 1, पृ0 सं0– 384.

6. सुखपूर्वक बैठो।
7. सुखपूर्वक खाओ।
8. सुखपूर्वक सोओ।
9. अग्नि का सदा सावधानी के साथ रखो।
10. गृह देवताओं का आदर करो।

इन दस षिक्षाओं का अर्थ निम्न प्रकार से लगाया जाता था।[1]

(1) यदि सास अथवा कोई घर की स्त्री घर के अन्दर कोई गुप्त करे, तो उस बात को नौकरों अथवा दास–दासियों को न कहना चाहिए, क्योंकि ऐसी बातें इनके द्वारा इधर–उधर कह दी जाती हैं और नौकरों की बातों को घर के लोगों से नहीं बन जाती हैं।

(2) दास–दासियों अथवा नौकरों की बातों को घर के लोगों से नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसी बातें इधर–उधर फैलकर व्यर्थ ही झगड़ा पैदा कर देती है।

(3) उसी को घर के वस्तुओं आदि को दो जो उनको वापिस कर दे।

(4) उसको घर की चीजें नहीं देनी चाहिए जो लौटावे नहीं।

(5) अपने गरीब सम्बन्धियों की, जो तुमसे सहायता चाहते हैं, बिना इस बात का ख्याल किए कि ये लौटा सकेंगे, अथवा नहीं, सहायता करो।

(6) अपनी सास अथवा ससुर को देखकर खड़ी हो जाओ, बैठी मत रहो।

(7) स्त्री को अपने सास–ससुर तथा पति के भोजन करने से पहले स्वयं भोजन नहीं करना चाहिए। उसे उनको पहले भोजन परोसना चाहिए तथा जब वे लोग, जो कुछ उनको चाहिए, ले चुकें तभी उसको भोजन करना चाहिए, कभी भी उससे पहले नहीं।

(8) स्त्री का अपने सास, ससुर और पति से पहले नहीं सोना चाहिए। उनके लिए उसके जो कर्त्तव्य हैं, उन्हें कर चुकने के बाद ही उसको सोना चाहिए।

(9) स्त्री को अपनी सास, ससुर और पति को अग्नि की ज्वाला अथवा नागदेव समझना चाहिए।

(10) जब कोई भिक्खु अथवा साधु बहुत दिन तक सुदूर जंगल में रहकर आवें और उसको गृहपत्नी स्त्री देख ले तो ऐसे साधु को उसे जो कुछ रूखा–सूखा घर में हो, देना चाहिए और तब स्वयं भोजन करना चाहिए।

धम्मपदट्ठकथा में बहु विवाह के सम्बन्ध में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि मगध के एक 'मद्य' नामक गहपति के एक साथ नन्दा, चित्ता, सुधम्मा और सुजाता नाम की चार पत्नियाँ

1. धम्मपद पालि अट्ठकथा, भाग– 1, पृ0 सं0– 403, 404.

थीं।[1] इसी प्रकार श्रावस्ती का एक गृहस्थ पहली स्त्री के बाँझ (बन्धया) होने के कारण दूसरी पत्नी से विवाह कर लिया। जब यह गर्भवती हुई तो दूसरी बांझ सपत्नी ने ईष्या के कारण दवा देकर उसका गर्भपात करा दिया। तीन बार यह नृषंस और नीचता पूर्ण कार्य उसने किया और अन्तिम गर्भपात होने के साथ दूसरी पत्नी मर गई। पति को जब यह मालुम हुआ तो वह इस अपराध के दण्ड से बच न पाई। उसने उसको स्त्रीध्नी और कुलध्नी घोषित करके पीट–पीट कर मार डाला।[2]

विशाखा अंग देष के भद्दिय नगर के मेण्डक श्रेष्ठी के पुत्र धनंजय की पुत्री थी। मेण्डक के कुटुम्ब के लोग बुद्ध भगवान् के परम भक्त थे। कौषल के राजा प्रसेनजीत की प्रार्थना पर धनंजय श्रेष्ठी साकेत से जाकर उसके राज्य में रहने लगा। विसाखा का मिगारश्रेष्ठि के पुत्र पुण्णड्ढन के साथ पाणिग्रहण हुआ था, जो कि निर्गन्थों के मत का अनुयायी था। विवाह के बाद वह अपने श्वसुर के साथ श्रावस्ती में रहने लगी। एक दिन मिगार श्रेष्ठी ने पांच सौ निर्गन्थ साधुओं को निमंत्रित किया। जब वे निर्गन्ध साधु आए तो श्रेष्ठी ने अपनी पुत्रवधू विसाखा से वहाँ आकर उन अर्हन्तों का नमस्कार करने को कहा। अर्हन्तों का नाम सुनकर वह आई और उनको देखकर कहा– 'ऐसे लज्जारहित प्राणी अर्हन्त नहीं हो सकते। मेरे श्वसुर ने मुझे यहाँ क्यों बुलाया?' ऐसा कहकर उसने अपने श्वसुर को दोष दिया और अपने निवास भवन में चली गई। निर्गन्थ साधुओं ने यह देखकर श्रेष्ठी को दोष दिया और श्रेष्ठी से उसको घर से बाहर निकाल देने को कहा, क्योंकि वह श्रमण गौतम की अनुयायी है, किन्तु श्रेष्ठी ने यह जानकर कि ऐसा करना संभव नहीं है, उन साधुओं से क्षमा मांगी और उनको विदा किया।

इस घटना के बाद एक दिन श्रेष्ठी एक अमूल्य आसन पर बैठकर सुनहरे बर्तन से शहद निकाल–निकाल कर उसके साथ रवड़ी खा रहा था, और विषाखा उसके पार्ष्व में खड़ी उसके ऊपर पंखा झल रही थी। उस समय एक बौद्ध भिक्षु भिक्षा के लिए उसके घर में घुसा और उसके सामने आकर खड़ा हो गया, किन्तु श्रेष्ठी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस बात को देखकर विसाखा ने भिक्षु से कहा 'महाराज' दूसरे घर जाइए, मेरा श्वसुर वासा भोजन खा रहा है। इस पर श्रेष्ठी क्रुध हुआ, खाना बन्द कर दिया और अपने आदमियों को आज्ञा दी कि उसको घर से बाहर निकाल दें। इस पर विसाखा ने कहा कि उसके अपराध का निर्णय होना चाहिए। श्रेष्ठी ने इस बात को मान लिया और उसके रिष्तेदारों को बुला लिया और उनको बतलाया कि मेरी पुत्रवधू ने एक बौद्ध भिक्खू के आगे कहा कि मैं वासा भोजन कर रहा हूँ, जब कि मैं शहद के साथ रबड़ी खा रहा था। विषाखा के रिष्तेदारों ने विषाखा से इस बात की सच्चाई के बारे में पूछ–ताछ की। विषाखा के रिष्तेदारों ने विषाखा ने कहा कि मैंने

1. धम्मपद पालि अट्ठकथा, भाग– 1, पृ0 सं0– 269

2. वही, पृ0 सं0– 45.

ऐसा नहीं कहा। मैंने तो केवल इतना कहा है कि मेरे श्वसुर अपने पूर्व जन्म के पुण्यों का फल भोग रहे हैं। इसके बाद विषाखा ने उस सारी बात को स्पष्ट कर दिया, जिसके कारण उसके श्वसुर ने उसके ऊपर अपराध लगाया था। जब रिष्तेदारों ने उसको निरपराध पाया तो वह श्वसुर के घर को छोड़ने के लिए तैयार हो गई। इस पर उसके श्वसुर ने क्षमा मांगी और पुत्रवधू से घर में ही रहने के लिए अनुरोध किया। विषाखा इस शर्त पर घर में रहने के लिए तैयार हुई कि उसको अपनी इच्छानुसार बौद्ध भिक्खुओं को सत्कार करने की अनुमति दी जाए।

दूसरे दिन उसने बुद्ध भगवान् को निमंत्रण दिया। निर्गन्ध साधुओं ने यह जानकर कि मिगार श्रेष्ठी के घर भगवान् बुद्ध जा रहे हैं, उसके घर को घेर लिया। विषाखा ने अपने ससुर को कहलवाया कि वे आवें और स्वयं बुद्ध भगवान् को भोजन परोसें। निर्गन्थ साधुओं ने श्रेष्ठी को वहाँ जाने से रोक दिया। इस पर विषाखा ने भगवान् बुद्ध को और उनके भिक्खुओं को स्वयं भोजन परोसा। भोजन समाप्त होने पर विषाखा ने श्वसुर को कहलवाया कि वे आकर भगवान् का धर्मोपदेष सुन लें। इस पर भी निर्गन्ध साधुओं ने श्रेष्ठी से कहा कि उसका उस समय पर जाना अत्यन्त अनुचित है। इस पर भी जब वह उपदेष सुनने गया तो निर्गन्ध साधुओं ने वहाँ पहले से ही पहुँच कर एक पर्दा लगा दिया और श्रेष्ठी से पर्दे के बाहर बैठने को कहा। श्रेष्ठी बाहर बैठ गया, भगवान् बुद्ध का उपदेष सुना और से पर्दे के बाहर बैठने को कहा। इसके बाद अपनी पुत्रवधू के पास जाकर कहा– 'अब से तुम मेरी माता हो।' तब से विषाखा मिगारमाता के रूप में विख्यात हुई। मिगार ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। बाद में विषाखा ने श्रावस्ती में सत्ताईस करोड़ की लागत का एक बौद्ध विहार बनवाया।[1]

एक कृषक कन्या के अधिकार में एक धान का खेत था। एक बार जब कि वह अपने खेत में धान भून रही थी। थेर महाकास्यप, जो कि पिप्फली गुफा में एक सप्ताह से ध्यान में लीन थे, उस लड़की के पास भिक्षा के लिए आए। उस लड़की ने आल्हादपूर्ण हृदय से थेर को भूने हुए धानों की भिक्षा दी। जिसको कि थेर ने स्वीकार किया। जब वह लड़की थेर महाकस्यप के पास से अपने धान भूनने के स्थान पर जा रही थी तो एक विषैले सर्प ने उसको काट लिया और वह तत्क्षण मर गई। इस पुण्य कार्य के फलस्वरूप मृत्यु के बाद उसने तावतिंस स्वर्ग के सुवर्ण प्रासाद में जन्म लिया और उसका लाजदेवधीता नाम रखा गया। महाकास्यप की सेवा में उपस्थित होती थी। वहाँ जाकर वह उनकी कुटी को साफ रखती थी और उनके लिए पानी भरकर रखती थी, किन्तु दो दिन बाद ही उसको और अधिक सेवा करने से मना कर दिया गया, क्योंकि यह मालूम हो गया कि वह देवी थी। थेर महाकास्यप

1. धम्मपद पालि अट्ठकथा, भाग– 1, पृ0 सं0– 384.

की सेवा से वचिंत होने के कारण उसको बहुत शोक और दुःख हुआ। बुद्ध भगवान् को यह मालूम हुआ तो उन्होंने धर्मोपदेष दिया, जिससे उसको सोतापति फल प्राप्त हुआ।[1]

धम्मपदट्ठकथा के उपर्युक्त वर्णन से उस समय के तात्कालीन सामाजिक व्यवस्था का पूर्ण रूप से विवरण हमें प्राप्त होता है। ब्राह्मण, राजा, वैष्य, शुद्र, गणिका, भिक्षु आदि का तो सामाजिक परिस्थिति की झलक मिलती ही है साथ ही उस समय व्याप्त सामाजिक कुरीतियाँ, दहेज प्रथा, पारिवारिक सम्बन्धों, प्रकृति के विभिन्न रूपों, रहन–सहन, आर्थिक, भौगोलिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि का भी हमें धम्मपद तथा धम्मपदट्ठकथा में वर्णित कहानियों के द्वारा ज्ञान मिलता है। साथ ही साथ उस समय समाज में निर्गन्थों, आजीवक, तथा अन्य धर्मावलम्बियों के मतों के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। धम्मपदट्ठकथा के वर्णनों से छठी शताब्दी ई0 पू0 तथा भगवान् बुद्ध के समय का सामाजिक व्यवस्था का विषेष विवरण उपलब्ध होता है।

सन्दर्भ सूचि :

1. उपासक, सी0 एस0, *धम्मपद अट्ठकथा,* नालन्दाः नव नालन्दा महाविहार, भाग– 1, 2, 1976.
2. हरमन, एस0 सी0, *धम्मपद अट्ठकथा,* लन्दनः पालि टैक्स्ट सोसायटी, भाग– 1, 2, 3, 4,
3. काष्यप, भिक्षु जगदीष, *मज्झिम निकाय,* नालन्दाः बिहार राज्य पालि प्रकाषन मण्डल, 1960.
4. आचार्य, नारायण राम, *मनुस्मृति,* मुम्बईः सत्य भाभाबाई पाण्डुरंग, 1946.
5. काष्यप, भिक्षु जगदीष, *जातक,* नालन्दाः बिहार राज्य पालि प्रकाषन मण्डल, भाग– 2, 1959.
6. काष्यप, भिक्षु जगदीष, *दीघ निकाय,* नालन्दाः बिहार राज्य पालि प्रकाषन मण्डल, भाग– 1, 2, 3, 1958.

1. धम्मपद पालि अट्ठकथा, भाग– 3, पृ0 सं0– 6, 9